International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 61-64

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 61-64
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 27-08-2020
Accepted: 05-10-2020

डॉ॰ अर्चना कुमारी
शिक्षाविद्, तिलका माँझी
भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ॰ अर्चना कुमारी
शिक्षाविद्, तिलका माँझी
भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर, बिहार, भारत

कारक अनुशीलन : कर्मकारक के परिप्रेक्ष्य में

डॉ॰ अर्चना कुमारी

प्रस्तावना

'क्रियते इति कर्म' इस व्युत्पत्ति में तनादिगणीय उभयपदी डुकृञ्-करणे धातु से सार्वधातुभ्यो मनिन् (584) इस उणादि सूत्र से मनिन् प्रत्यय से कर्म शब्द निष्पन्न होता है। इसका वास्तविक अर्थ है क्रिया। 'यत् क्रियते तत्कर्म' इस व्युत्पत्ति से कर्म शब्द भी निष्पन्न होता है। व्याकरणशास्त्रों में इस अर्थ की व्यापकता है क्योंकि सकर्मक धातुओं से कर्म का सम्बन्ध होता है, कहीं विशेष परिस्थिति में अकर्मक धातुओं से भी होता है। संस्कृत में भाववाचक प्रत्यय घटित धातु 'करोति इति' से क्रिया कर्म होता है, यथा - शयनं करोति, अध्ययनं करोति आदि वाक्यों में भाव तथा कर्मत्व दोनों सुरक्षित रहते हैं।

कर्त्ता के ईप्सिततम की कर्मता -

क्रिया की सिद्धि में कर्त्ता के सर्वाभीष्ट पदार्थ को कर्म कहा गया है - कर्तुरीप्सिततमं कर्म।[1] 'पुस्तकं पठति' इस वाक्य में कर्त्ता का अभीष्टतम पदार्थ पुस्तक है अतः पुस्तक कर्म है। 'माषेष्वश्वं बध्नाति' इस वाक्य में कर्त्ता का अभीष्ट अश्व है अतः अश्व कर्म है परन्तु कर्म अश्व का अभीष्ट माष है, अतएव इसकी कर्म संज्ञा न होकर अधिकरण संज्ञा हुई। पुनश्च कर्त्ता के ईप्सिततम की कर्म संज्ञा होती है न कि कर्म की। यथा - 'अग्नेर्माणवकं वारयति' में कर्त्ता का ईप्सिततम माणवक की कर्म संज्ञा तथा अग्नि की अपादान संज्ञा हुई। पुनश्च 'पयसा ओदनं भुंक्ते' में ओदन के ईप्सिततम होने से कर्म संज्ञा परन्तु पयः के ईप्सित होने से करण संज्ञा हुई। पुनश्च 'पुष्पाणि स्पृह्यति' में स्पृहा के ईप्सिततम होने से पुष्प की कर्म संज्ञा तथा 'पुष्पेभ्य: स्पृह्यति' में स्पृहा के ईप्सित होने से पुष्प की सम्प्रदान संज्ञा हुई।

अनीप्सित का कर्मत्व -

इष्टतम के समान ही कर्त्ता के क्रिया से युक्त अनीप्सित कारक भी कर्म होता है - तथायुक्तं चानीप्सितम्।[2] ईप्सित से भिन्न सभी अनीप्सित तथा द्वेष्य हैं। यथा - विषं भक्षति, चौरान् पश्यति आदि में कर्त्ता का ईप्सित विषभक्षण या चौरदर्शन नहीं है। अतः प्रस्तुत नियम से कर्मसंज्ञक है।

कात्यायन ने अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य मार्ग की कर्म संज्ञा मानी है - अकर्मक-धातुभिर्योगे देश: कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्।3 यथा - देशवाचक - कुरून् स्वपिति, कालवाचक - मासमास्ते, भाववाचक - गोदोहमास्ते, गन्तव्य अध्वावाचक - क्रोशमास्ते। इस विषय में भर्तृहरि ने कहा है –

कालभावाध्वदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरै:।
सर्वैरकर्मकैर्योगे कर्मत्वमुपाजयते॥4

प्रयोज्यकर्त्ता की कर्मता -

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक तथा अकर्मक धातुओं की अण्यन्तावस्था के कर्त्ताओं की ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा होती है - गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ।5 इसे इस प्रकार समझा जा सकता है –

तालिका 1.

धातु	अणिजन्त कर्त्ता	णिजन्त कर्त्ता की कर्मता
गत्यर्थक गम्	माणवक: ग्रामं गच्छति।	माणवकं ग्रामं गमयति।
गत्यर्थक वह्	बलीवर्दा: यवान् वहन्ति।	बलीवर्दान् यवान् वाहयति।
ज्ञानार्थक विद्	माणवक: धर्मं वेत्ति।	माणवकं धर्मं वेदयति।
भोजनार्थक भुज्	माणवक: ओदनं भुंक्ते।	माणवकं ओदनं भोजयति।
शब्दकर्मक पठ्	छात्र: वेदं पठति।	छात्रं वेदं पाठयति।
अकर्मक शीङ्	देवदत्त: शेते।	देवदत्तं शाययति।
अकर्मक आस्	देवदत्त: मासम् आस्ते।	देवदत्तं मासम् आसयति।

अकथित कर्म तथा द्विकर्मक धातुएँ -

अपादान, सम्प्रदान, अधिकरण, कर्म, करण, कर्त्ता आदि कारकों की अविवक्षा में सम्बन्ध सामान्य से अपनी ही विवक्षा में उन कारकों की कर्म संज्ञा होती है - अकथितञ्च।6 यह अविवक्षा किसी सकर्मक धातुओं के प्रयोग में ही होती है जिन्हें द्विकर्मक धातुएँ कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि ऐसी धातुएँ दो कर्मों को प्राप्त करती हैं। प्रथम ईप्सिततम कर्म तथा द्वितीय अकथित या अविवक्षित कर्म। 'गां दोग्धि पय:' में पय: ईप्सिततम या मुख्य कर्म है तथा गो की अपादान की विवक्षा में अकथित कर्म है। गो की अपादान विवक्षा होने पर तो 'गो: दोग्धि पय:' में पञ्चमी होगी। गो तथा पय: की सम्बन्ध मात्र विवक्षा में षष्ठी भी होती है -'गो: पयो दोग्धि'

पतञ्जलि ने 8 द्विकर्मक धातुओं की परिगणना की है। एक कारिका है –

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ।7
ब्रुविशासि गुणेन च यत् सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना॥

भट्टोजि दीक्षित ने आठ से अधिक सोलह धातुओं तथा तदर्थक धातुओं को द्विकर्मक माना है। कारिका है -
दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रूशासु-जि-मन्थमुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-ह्व-कृष्-वहाम्॥8
इसे क्रमश: इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

तालिका 2.

अप्रधान कर्म (अविवक्षित कर्म)	प्रधान कर्म	क्रिया पद
गां (गोः- अपादान की अविवक्षा में)	पयः	दोग्धि (दुह् धातु)
बलिं (बले:- अपादान की अविवक्षा में)	वसुधां	याचते (याच् धातु)
तण्डुलान् (तण्डुलै:- करण की अविवक्षा में)	ओदनं	पचति (पच् धातु)
गर्गान् (गर्गात्- अपादान की अविवक्षा में)	शतं	दण्डयति (दण्ड् धातु)
व्रजम् (व्रजे- अधिकरण की अविवक्षा में)	गाम्	अवरुणद्धि (रुध् धातु)
वृक्षम् (वृक्षात्- अपादान की विवक्षा में)	फलानि	अवचिनोति (चिञ् धातु)
माणवकम् (माणवकात्- अपादान की अविवक्षा में)	पन्थानं	पृच्छति (प्रच्छ् धातु)
माणवकम् (माणवकाय- सम्प्रदान की अविवक्षा में)	धर्मं	ब्रूते शास्ति वा (ब्रू-शासु धातु)
देवदत्तम् (देवदत्तात्- अपादान की अविवक्षा में)	शतं	जयति (जी धातु)
ग्रामम् (ग्रामे- अधिकरण की अविवक्षा में)	अजां	नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (नी, हृ, कृष्, वह् धातु)

'अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा' के आधार पर उपर्युक्त धात्वर्थ वाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक ही होंगी, यथा - बलिं (बले: - अपादान) वसुधां भिक्षते (भिक्ष् धातु), माणवकं (माणवकाय - सम्प्रदान) धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति वा (भाष्, धा, वच्)

कर्म भेद -

पाणिनि ने दो प्रकार के कर्म माने हैं - ईप्सिततम तथा सूत्रान्तरलक्षित।

ईप्सिततम कर्म के तीन भेद होते हैं –

निर्वर्त्य च विकार्य च प्राप्यं चेति त्रिधा मतम्।
तत्रेप्सिततमं कर्म चतुर्धान्यत्तु कल्पितम्॥[9]

1. निर्वर्त्य कर्म -

निर्वर्तित होने वाले पदार्थ की सत् या असत् प्रकृति के भेद रूप में विवक्षा होने पर निर्वर्त्य कर्म होता है - 'मृदा घटं करोति' इस वाक्य में मृद् की निवृत्ति से घट की उत्पत्ति होती है। अतः घट निर्वर्त्य कर्म है।

2. विकार्य कर्म -

प्रकृति की अविवक्षा होने पर विकार्य कर्म होता है - 'मृदं घटं करोति' इस वाक्य में घट तो निर्वर्त्य कर्म है तथा मृद् विकार्य कर्म है।

3. प्राप्य कर्म -

जिसके साथ क्रिया का सामान्य सम्बन्ध प्राप्य रहता है किन्तु उस क्रिया के द्वारा उत्पन्न होने वाली विशेषताओं का ज्ञान प्रत्यक्षतः या अनुमान से नहीं होता, प्राप्य कर्म होता है - आदित्यं पश्यति, ग्रामं गच्छति।

सूत्रान्तरलक्षित कर्म के चार भेद होते हैं –

औदासीन्येन यत्प्राप्यं यच्च कर्तुरनीप्सितम्।
संज्ञान्तरैरनाख्यातं यद्यच्चाप्यन्यपूर्वकम्॥[10]

1. उदासीन कर्म -

मुख्य कर्म के अतिरिक्त अनीप्सित कर्म उदासीन कर्म होता है - 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' इस वाक्य में ग्राम मुख्य कर्म तथा तृण अनीप्सित कर्म या उदासीन कर्म है।

2. द्वेष्य कर्म -

जो अनीप्सित के साथ अनिष्ट साधन हो, पर क्रियफल धारण करता हो, द्वेष्य कर्म कहलाता है - 'विषं भुंक्ते' इस वाक्य में विष भक्षण अनीप्सित तथा द्वेष्य है।

पाणिनि ने इसका अनुशासन - तथायुक्तं चानीप्सितम्[11] से किया है।

3. संज्ञान्तर से अविवक्षित कर्म -

अपादान आदि विशेष संज्ञाओं से अविवक्षित कर्म, अकथित या गौण कर्म होता है - 'गां दोग्धि पयः' इस वाक्य में पयः

मुख्य कर्म है, पर गोः अपादान संज्ञा धारक है परन्तु उसकी अविवक्षा में गां कर्म हो गया है।

पाणिनि ने इसका अनुशासन - अकथितञ्च[12] से किया है।

4. अन्यपूर्वक कर्म -

इसके अन्तर्गत पाँच सूत्र आते हैं -

(क) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म[13] - देवदत्तम् अभिक्रुध्यति।

(ख) अधिशीङ्स्थासां कर्म[14] - हरिः वैकुंठम् अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

(ग) अभिनिविशश्च[15] - सन्मार्गम् अभिनिविशते।

(घ) उपान्वध्याङ्वसः[16] - सेना ग्रामम् उपवसति, अनुवसति, आवसति वा।

(ङ) दिवः कर्म च[17] - अक्षान् दीव्यति।

पाद टिप्पणी -

1. अष्टाध्यायी, 1.4.49
2. वही, 1.4.50
3. वार्तिकम्, 1.4.51
4. वाक्यपदीयम्, 3.7.67
5. अष्टाध्यायी, 1.4.52
6. वही, 1.4.51
7. महाभाष्यम्, 1.4.51
8. अष्टाध्यायी, 1.4.51
9. वाक्यपदीयम्, 3.4.51
10. वही, 3.4.45
11. अष्टाध्यायी, 1.4.50
12. वही, 1.4.51
13. वही, 1.4.58
14. वही, 1.4.46
15. वही, 1.4.47
16. वही, 1.4.48
17. वही, 1.4.53

सहायक ग्रन्थ सूची -

1. दीक्षित, भट्टोजि, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999
2. ऋषि, उमाशंकर शर्मा, संस्कृत व्याकरण में कारकत्वानुशीलन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011
3. वामन जयादित्य, काशिका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969
4. पाणिनि, अष्टाध्यायी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2015